आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 2/अंक 1/मार्च 2022
Received: 18/02/2022; Accepted: 22/02/2022; Published: 24/03/2022

कन्नड़ कथा साहित्य में मानव संघर्ष की चेतना

(कुवेम्पु के उपन्यासों के सन्दर्भ में)

डॉ. नागरत्ना .एन. राव
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
विश्वविद्यालय कॉलेज, मंगलौर

डॉ. नागरत्ना एन राव, **कन्नड़ कथा साहित्य में मानव संघर्ष की चेतना** , आखर हिंदी पत्रिका, खंड 2/अंक1/मार्च 2022, (3-5)

कन्नड़ साहित्य में कुवेम्पु मानव मुक्ति और मानव संघर्ष की चेतना युक्त एक जागरूक रचनाकार हैं, जिन्होंने बड़ी गंभीरता से पूंजीवादी और धार्मिक पाखंड के खिलाफ अपनी लेखनी चलाई। इसलिए कन्नड़ के राष्ट्र कवि दत्तात्रेय रामचंद्र बेंद्रेजी उन्हें "युग दृष्टा एवं जगकवि" के रूप में सम्बोधित करते हैं। कुवेम्पु कन्नड़ के एक प्रसिद्ध उपन्यासकार, नाटककार, आलोचक, चिंतक एवं कवि हैं। वे कन्नड़ सारस्वत लोक में व्यापक चेतना को प्रवाहित करने वाले एक ऐसे अद्‌भुत लेखक हैं जिन्होंने कन्नड़ समाज में व्याप्त सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक जकड़बन्दियों में फंसी दीन जनता के मानसिक और शारीरिक संघर्ष का यथार्थ चित्रण अपनी रचनाओं में किया है।

कुवेंपुजी का साहित्य, भारत के ग्रामीण जीवन की प्रामाणिक तस्वीरें हैं। उनकी कई रचनाओं में मानवीय ज़िन्दगी के विविध पक्षों का चित्रण है। इनकी भाषा में सहजता एवं सरलता है, इनकी भाषा शैली की सादगी ने इनकी कृतियों को अमरता प्रदान की है। "कानूरु हेग्गडती", मालेगाळली मदुमगलू", इनकी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचनाएं हैं। इनकी कथाओं में कलात्मक प्रयोग, ह्रदय परिवर्तन और त्रासदी के यथार्थ को दर्शाया गया है। इनके कथ्य ग्रामीण जीवन में, कृषक परिवार का संघर्ष और उनके अस्तित्व की गाथा को अभिव्यक्ति देते हैं। गाँवों में टूटते, बिखरते परिवारों की चिंता उनके कथ्य की वस्तु को विस्तार देते हैं। उन्हें संयुक्त परिवार के प्रति विशेष संवेदना है। आज भी अनेक कारणों से

संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और तत्कालीन समय में भी टूटकर बिखर रहे थे। वे संयुक्त परिवार की इस सुदीर्घ परंपरा को टूटते हुए नहीं देख सकते थे और इसी कारण उन्होंने उसे जोड़े रखने का भरसक प्रयास किया। ग्रामीण संस्कारों से भीगा उनका मन परिवार की एकता को बनाये रखना चाहता था, तभी इन के कथा पात्र हर रिश्ते को बचाये रखने की कोशिश करते हैं।

"क़ानूरू हेग्गड़ती" अर्थात क़ानूरु गाँव की जमींदारनी जिसे कन्नड़ में हेग्गड़ती अर्थात मालकिन कहा जाता है। यह स्त्री चरित्र प्रधान रचना है जैसा कि इस उपन्यास के शीर्षक से ही ज्ञात होता है ।१९३६ में कुवेंपुजी द्वारा रचित यह उपन्यास स्त्री सशक्तिकरण का एक उत्तम दृष्टांत है। इसके कथ्य से प्रेरित होकर कन्नड़ के सुप्रसिद्ध नाटककार, फिल्म निर्देशक एवं उत्कृष्ट अभिनेता गिरीश कर्नाड ने १९९९ में इस पर एक फिल्म भी बनाई। परतंत्र भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक समस्याओं के बीच इसकी कथा मुख्य रूप से राष्ट्रवादी भावना से परिपूर्ण है। साथ ही एक गाँव में प्रचलित कट्टरता का चित्रण भी इसमें सफलतापूर्वक हुआ है।

कनूरु ग्राम की ज़मींदारानी की यह कथा व्यक्ति में जागरूकता का सञ्चालन करती है। इसमें चंद्रगौड़ा ज़मींदार के संयुक्त परिवार की त्रासदी का चित्रण है। चंद्रगौड़ा, भारतीय सामंती समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला एक पूँजीवादी पात्र है। कुवेंपुजी की यह एक कालजयी कृति है जिसमें जनसंघर्ष का तांडव है। महाजनी सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वाले एक कुशक परिवार का चित्रण है। यह उस समय की घटना है जब भारत में, उपनिवेशवाद की छत्रछाया में पूंजीवादी समाज के रूप में परिवर्तित हो रहे थे। गाँव के ज़मींदार चंद्रगौड़ा को एक तरफ अपनी पैतृक संपत्ति को बचाने की जिद है तो दूसरी तरफ अपने मृत भाई के परिवार की जिम्मेदारी से अपने आपको मुक्त करने का संघर्ष भी है। इसीलिए वे भाई के बेटों को घर से निकलने का आदेश देते हैं जबकि वे अपनी पढाई समाप्त करने तक की मोहलत माँगते हैं। उनकी माँ वहीँ गाँव में सुरक्षित रह सकती थीं। लेकिन चंद्रगौड़ा अपनी हताशा को निकालने के लिए अनमेल विवाह कर नयी बहु को घर लाता है पर उससे भी उनकी नहीं बनती। चंद्रगौड़ा की क्रुध्धता का कारण वह स्वयं था। पर वह अपना सारा गुस्सा नयी दुल्हन पर निकालता। इस प्रकार न वह अपने जीवन से खुश था और न दूसरों को किसी प्रकार की ख़ुशी दे सकता था। अंततः उसकी मृत्यु हो जाती है और जमींदारनी ही गाँव की सर्वेसर्वा हो जाती है। वह पूरी संपत्ति की देखरेख करती है। ज़मींदार ने मरने से पहले अपने भाई के परिवार का बंटवारा कर दिया था। वे वही पास में ही रहते थे। जमींदारनी चाहती तो एक बार फिर सब मिलजुलकर रह सकते थे। लेकिन उसे तो राज करना था। वह अपना मालिकाना अधिकार नहीं छोड़ना चाहती थीं। उनकी इसी महत्वाकांक्षा ने उन्हें बर्बाद कर के रख दिया। अपने ही नौकर से अनचाहा गर्भ धारण कर वह अपने वर्चस्व को खो देती है। व्यक्ति को केवल एक ही सुख मिल सकता है, इस कथ्य का ज्वलंत उदहारण है -हेगड़ती यानि ज़मींदारनी। वे चाहती तो एक आदर्श बहू और ज़मींदारानी बनकर अपने परिवार को एक कर सकती थीं और स्वयं भी इज़्ज़त से जी सकती थीं। व्यक्ति जब आत्मकेंद्रित और स्वार्थी हो जाता है तो उसका विनाश निश्चित है। यह ज़मींदार और ज़मींदारानी के जीवन से सन्देश मिलता है। उन दोनों का एक अंतहीन संघर्ष था जिसमें व्यक्ति की महत्वाकांक्षा उसकी उच्चाकांक्षा बन उसे उसके ही स्वार्थ के चक्रव्यूह में फंसकर अंत कर देती है। इस उपन्यास के सभी पत्रों में उनके जीवन की बेचैनी, चुनौतियों की चुनौती और उनका संघर्ष देखने को मिलता है। इनके निजी संघर्षों की प्रतिछवियां विभिन्न प्रसंगों में देखने को मिलती हैं। अतः क़ानूरु की जमींदारनी की यह कथा स्त्री मुक्ति के संघर्ष से प्रारम्भ होकर उसके जीवन से मुक्ति के संघर्ष की कथा बन जाती है।

मलेगळली मदुमगलू - कुवेंपुजी द्वारा रचित यह उपन्यास भी मानव जीवन संघर्ष की अकथ कथा है। यह घटना बहुल उपन्यास है जिसमें लेखक विविध प्रसंगों के माध्यम से गाँवों की सामजिक, धार्मिक और राजनितिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करते है। यह गुत्ती नामक एक बंडुआ की कथा है जो अपने पिता के द्वारा किये गए ऋण से मुक्त हुए बिना अपनी पसंद की लड़की से विवाह नहीं कर सकता। फिर भी वह अपने दिल में कई सपने सजाये सकारात्मक सोच से मलनाडु प्रान्त से आगुम्बे यानि शिमोगा की तरफ के लिए निकल पड़ता है ताकि उनके गाँव के ज़मींदार का काम भी हो जाए और उसका उद्देश्य भी। गुट्टी एक

भोला-भाला और मेहनती है। वह वेंकन्ना को पात्र देने के बहाने उस गाँव के गोदा की बेटी के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखना चाहता है। अपनी इस महत्वाकांक्षा को पूरा करने की धुन में वह अतिवृष्टि की भी चिंता न कर पानी में डूबते हुए उस गाँव तक पहुँच जाता है। जाकर अपने मन की बात को बयान करने के बाद उसे सत्य का साक्षात्कार हो जाता है। वह जिन कामों को पूरा करने के लिए आया था उनमें से एक भी पूरा नहीं हो पाता। एक तरफ उसे अपने प्यार के बदले निराशा हाथ लगाती है तो दूसरी तरफ वह जिस पत्र को पहुँचाने आया था वह भी पूरा का पूरा पानी में भीगकर कागज़ का लोथा बन गया था।

प्रेमचंदजी, साहित्य को "जीवन की आलोचना" मानते थे। इसी कारण उन्होंने अपनी रचनाओं में शोषितों, पददलितों, पीड़ितों के मानसिक और शारीरिक मूक संघर्ष को वाणी दी। हिंदी साहित्य के प्रेमचंद के समान कन्नड़ के ज्ञानपीठ पुरुस्कृत साहित्यकार कुवेंपुजी ने भी पर्याप्त विवेक एवं सत्यनिष्ठा के साथ जनता के शोषकों, अत्याचारियों और उत्पीड़कों के कुकृत्यों को अंकित करते हैं। प्रस्तुत कथा भले ही कर्णाटक के मलनाडु प्रांत के तीर्थहल्ली गाँव और आगुम्बे क्षेत्र की कथा है लेकिन ये भारत के कई गाँवों की सच्ची कहानी है। हम सोचते हैं कि राजनीति केवल नगरों में है पर ग्रामों में वही समस्याएं अलग स्टारों की होती हैं। गाँवों में ज़मींदार लोग किसानों, मज़दूरों की मजबूरी और लाचारी का फायदा उठाते हैं। उनकी बेबसी का दुरुपयोग करते हैं। इस उपन्यास में एक ओर जहाँ गांववालों की अपनी स्वार्थपरकता और उसके परिणामों की झलक मिलती है तो वहीँ दूसरी और गांववालों पर बाहरी विचारधाराओं का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है जैसे गांववालों की दिनचर्या पर ईसाई मिशनरियों का प्रभाव। इस बात को लेखक तीर्थहल्ली ग्राम के ज़मींदार हेगड़े के बेटे के माध्यम से अंकित करते हैं। वह नगर की मिशनरी संस्था से पढ़कर आये हैं और वे अपने जीवन में उसके अनुसार कुछ बदलाव लाना चाहते हैं। इसी दिशा में वे एक साइकल खरीदते हैं जिसे चलने के लिए वे तथा गांववाले काफी परिश्रम कर अंततः उसे चलने में समर्थ होते हैं। यहाँ पर लेखक ने बड़ी सहजता से ग्रामीण जीवन की सहजता को चित्रित किया है। हेगड़े का बेटा अपनी समझ के अनुसार गाँव में कुछ परिवर्तन करना चाहते हैं पर उनके पिता के विचार बिलकुल अलग हैं। उन दोनों में एक पीढ़ी का अंतर देखने को मिलता है। इसी कारण उन दोनों के सोचने की दिशा बिलकुल विपरीत है। इस रचना में ग्रामींण जीवन से जुडी कई सहज घटनाओं का चित्रण है, जो छोटी प्रतीत होती हैं पर उनके माध्यम से जीवन की सचाई बयां होती है। लेखक ने बड़ी ईमानदारी से पात्रों की मनोवृत्तियों की गहराई और उनके मनोभावों को व्यक्त किया है।

कुवेंपुजी की ये दोनों कथायें मानव-जीवन के यथार्थ को बड़ी सहजता से उभारते हैं। इनमें दुनिया के बदलते नज़रिये और उससे प्रभावित आम जनता का विविधमुखी संघर्ष अभिव्यक्त हुआ है। नगरों में पनपती लोगों की धूर्तता, चालाकी, स्वार्थपरता, समझौतावादी दृष्टिकोण का प्रभाव धीरे-धीरे गाँवों पर भी पड़ा, जिसके कारण गांववाले दुविधा में पड़ जाते हैं और सही-गलत समझ नहीं पाते हैं। व्यक्ति का दोगला स्वभाव उनकी समझ से परे है। इसी कारण वे अपने आतंरिक तथा बाह्य जीवन में सदा संघर्षरत हैं। जनजीवन के इस संघर्ष में स्त्री-मुक्ति का संघर्ष प्रमुख है। इनके कथ्य में सहजता और भाषा प्रवाहपूर्ण है। कुवेंपुजी के पत्रों का संघर्ष सामाजिक संघर्ष है। प्रेमचंद के अनुसार एक साहित्यकार का प्रथम कर्तव्य है - "जो दलित दलित है, पीड़ित है, वंचित है - चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फ़र्ज़ है " - कुवेंपुजी इस लेखक की इस कसौटी पर बिलकुल खरे उतरते हैं। इस प्रकार इनका साहित्य मुक्ति की चेतना का साहित्य है।

****